International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 • Website: www.ijfmr.com • Email: editor@ijfmr.com

विवाह विच्छेद की प्रक्रिया के अंतर्गत गर्भवती महिलाओं की मनो-सामाजिक समस्याएँ, अधिकार और पारिवारिक न्यायालय की भूमिका: एक अध्ययन

Ms. Shivani Singh[1], Dr. Ruchi Srivastav[2]

[1]Research Scholar, Sociology
[2]Assistant Professor, Sociology

सारांश:
विवाह विच्छेद की प्रक्रिया गर्भवती महिलाओं के लिए केवल वैवाहिक संबंधों की समाप्ति का विषय नहीं है, बल्कि यह भावनात्मक, सामाजिक, आर्थिक एवं कानूनी चुनौतियों से जुड़ा एक जटिल अनुभव भी है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य विवाह विच्छेद की प्रक्रिया के दौरान गर्भवती महिलाओं के समक्ष उत्पन्न होने वाली मनोसामाजिक समस्याओं, उनके विधिक अधिकारों तथा उनके संरक्षण में पारिवारिक न्यायालय की भूमिका का विश्लेषण करना है। गर्भवती महिलाओं को तलाक की प्रक्रिया के दौरान मानसिक तनाव, अवसाद, सामाजिक कलंक, आर्थिक असुरक्षा तथा भविष्य के प्रति अनिश्चितता जैसी गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भारतीय विधि व्यवस्था उन्हें भरण-पोषण, चिकित्सा सहायता, घरेलू हिंसा से संरक्षण, सम्मानजनक जीवन तथा होने वाले बच्चे के हितों की रक्षा जैसे महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान करती है। पारिवारिक न्यायालय इन अधिकारों के प्रभावी क्रियान्वयन, अंतरिम राहत, भरण-पोषण, अभिरक्षा तथा गर्भवती महिला एवं बच्चे के सर्वोत्तम हितों की सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तथापि, न्यायिक प्रक्रिया में विलंब, संसाधनों की कमी तथा सामाजिक पूर्वाग्रह न्याय प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करते हैं।

मुख्य शब्द: विवाह विच्छेद, गर्भवती महिला, भरण-पोषण, पारिवारिक न्यायालय, महिलाओं का अधिकार, अभिरक्षा।

परिचय

विवाह विच्छेद जिसे तलाक भी कहा जाता है। इसे कानूनी प्रक्रिया है। जिसके द्वारा पति और पत्नी के बीच स्थापित वैवाहिक संबंध को न्यायालय के आदेश से समाप्त किया जाता है। विवाह विच्छेद के बाद दोनों व्यक्ति कानूनी रूप से पति-पत्नी नहीं रहते और उन्हें स्वतंत्र रूप से अपना जीवन जीने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। यह प्रक्रिया तब अपनाई जाती है जब पति-पत्नी के बीच मतभेद इतने बढ़ जाते हैं कि साथ रहना संभव नहीं हो पाता। विवाह विच्छेद आपसी सहमति से या कानून में निर्धारित आधारों, जैसे- क्रूरता, परित्याग, व्यभिचार, मानसिक बीमारी या अन्य वैधानिक कारणों के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है। तलाक की प्रक्रिया के दौरान न्यायालय भरण-पोषण, बच्चों की अभिरक्षा और संपत्ति से संबंधित मामलों का भी निर्णय करता है। विवाह विच्छेद की प्रक्रिया के दौरान गर्भवती महिला कानूनी रूप से तलाक के लिए आवेदन कर सकती है, लेकिन अदालतें बच्चे के जन्म और उसके हितों को प्राथमिकता देती हैं। कार्यवाही में देरी हो सकती है, बच्चे की कस्टडी, भरण-पोषण और पितृत्व (पिता कौन है) जैसे अहम मुद्दों पर अंतिम फैसला बच्चे के जन्म के बाद ही लिया जाता है। भारत मे अलग-अलग धर्मो के लिए अलग-अलग वैवाहिक कानून बनाए गए है, हिन्दू के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम लागू होता है, जिसमे विवाह विच्छेद के

विभिन्न आधारों का उल्लेख किया गया है, जैसे- क्रूरता, परित्याग, मानसिक विकार आदि। मुसलमानों के लिए मुस्लिम विवाह विच्छेद तथा अन्य प्रासंगिक प्रावधान लागू होते है। जैसे की- शाह बानो एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला थीं, जिन्होंने अपने भरण-पोषण के लिए न्यायालय में याचिका दायर की। 1985 में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि CRPC की धारा 125 के तहत तलाकशुदा मुस्लिम महिला भी भरण-पोषण पाने की हकदार है। यह निर्णय महिलाओं के अधिकारों के लिए एक महत्वपूर्ण फैसला माना जाता है। ईसाई के लिए विवाह विच्छेद अधिनियम प्रभावी है, इन सभी कानूनों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि विवाह विच्छेद की प्रक्रिया न्यायपूर्ण संतुलित और दोनों पक्षों के अधिकार की रक्षा करने वाली हो न्यायलय विवाह विच्छेद के साथ-साथ भरण-पोषण सम्पत्ति के बटवारे और बच्चो की अभिरक्षा जैसे मुद्दों पर भी निर्णय देते है। साहू (2025)- भारतीय समाज में विवाह पवित्र माना जाता था, लेकिन आधुनिक जीवनशैली, मतभेद, अहंकार, समझ की कमी और महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता के कारण तलाक बढ़ रहा है। इसका प्रभाव पति-पत्नी के साथ बच्चों और परिवार पर भी पड़ता है, इसलिए विवाह में समझ, सहनशीलता और संवाद जरूरी हैं। फ़ोनसेका(1963)- भारत में बदलती जीवनशैली और मतभेदों के कारण परिवार टूटने और तलाक के मामले बढ़ रहे हैं। संयुक्त परिवार कम होने से समस्याएँ बढ़ती हैं, और इसका असर बच्चों व पूरे परिवार पर पड़ता है, जबकि समाज अभी भी तलाक को पूरी तरह स्वीकार नहीं करता। थडाथिल और श्रीराम (2020)- भारत में विवाह एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है, लेकिन आधुनिक समय में तलाक के मामलों में वृद्धि हो रही है। इसके मुख्य कारण आपसी समझ की कमी, घरेलू हिंसा, दहेज, शराब की आदत, ससुराल का हस्तक्षेप और विवाहेतर संबंध हैं। तलाक का असर पति-पत्नी के साथ-साथ बच्चों और परिवार पर भी पड़ता है, जिससे महिलाओं को मानसिक व आर्थिक समस्याएं और बच्चों में असुरक्षा बढ़ती हैं। सोलिचा और इस्तिक़ोमाह (2018)- विवाह के पहले वर्ष में गर्भवती महिला आर्थिक समस्याओं, परिवार के हस्तक्षेप, पति के खराब व्यवहार और जिम्मेदारी की कमी के कारण तलाक का निर्णय लेती है। जब सभी प्रयास असफल हो जाते हैं, तब वह अंत में तलाक का फैसला करती है।

विवाह विच्छेद के प्रक्रिया में गर्भवती महिलाओं की मनो-सामाजिक समस्याएँ अत्यंत कठिन और तनावपूर्ण अनुभव होती है। इस दौरान उसे मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक स्तर पर अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वैवाहिक संबंधों का टूटना, भविष्य की अनिश्चितता तथा परिवार के बिखरने की आशंका के कारण महिला में चिंता, तनाव, अवसाद, भय, क्रोध और अकेलेपन की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। गर्भावस्था के समय भावनात्मक सुरक्षा और पारिवारिक सहयोग की आवश्यकता अधिक होती है, लेकिन तलाक की प्रक्रिया में पति का सहयोग कम होने या समाप्त हो जाने से महिला स्वयं को असुरक्षित और उपेक्षित महसूस करती है। इसके अतिरिक्त, समाज में तलाकशुदा गर्भवती महिलाओं के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण और सामाजिक कलंक के कारण उन्हें आलोचना, भेदभाव तथा सामाजिक अलगाव का सामना करना पड़ सकता है। आर्थिक अस्थिरता भी एक महत्वपूर्ण समस्या है, क्योंकि चिकित्सा व्यय, प्रसव की तैयारी तथा बच्चे के पालन-पोषण की जिम्मेदारी अकेले उठानी पड़ सकती है। कई बार कानूनी कार्यवाही की लंबी प्रक्रिया, पारिवारिक विवाद और बच्चों की अभिरक्षा से जुड़ी चिंताएँ मानसिक तनाव को और बढ़ा देती हैं। लगातार तनाव और अवसाद का प्रभाव गर्भवती महिला के शारीरिक स्वास्थ्य तथा गर्भस्थ शिशु के विकास पर भी पड़ सकता है, जिससे अनिद्रा, भूख में कमी, उच्च रक्तचाप, समय से पूर्व प्रसव तथा अन्य गर्भावस्था संबंधी जटिलताओं का खतरा बढ़ जाता है। ऐसी परिस्थितियों में परिवार, मित्रों, स्वास्थ्यकर्मियों, मनोवैज्ञानिक परामर्शदाताओं तथा कानूनी सहायता का सहयोग अत्यंत आवश्यक होता है। इजुलहक़ (2025)- गर्भवती महिला को तलाक देने के बारे में है। इसमें बताया गया है कि शाफ़ी मज़हब के अनुसार गर्भावस्था में तलाक देना सही और जायज़ है, जबकि मालिकी मज़हब के कुछ विद्वान इसे गलत मानते हैं। दोनों अपने फैसले कुरआन और हदीस के आधार पर देते हैं। लेस्ली (1988)- यह अध्ययन महिलाओं की यौन और गर्भनिरोधक समस्याओं के बारे में है। इसमें बताया गया है कि विवाह विच्छेद के बाद महिलाओं को मानसिक तनाव, सामाजिक दबाव और सही जानकारी की कमी का सामना

करना पड़ता है, जिससे उनके स्वास्थ्य पर असर पड़ता है। इसमें महिलाओं के लिए बेहतर स्वास्थ्य सेवाएँ और परामर्श की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। मिश्रा, थम्मिनैना और मिश्रा (2021)- यह अध्ययन परिवार, बच्चों और आर्थिक जिम्मेदारियों को संभालने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों का उनके स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है। परिवार, दोस्तों, समाज और सरकार से मिलने वाला सहयोग उनके जीवन को आसान बनाता है। बर्नाज़ानी, सॉसियर, डेविड, और बोर्जेट, (1997)- गर्भावस्था के दौरान महिलाओं की भावनात्मक और मानसिक स्थिति पर परिवार, पति का सहयोग, आर्थिक स्थिति, वैवाहिक संबंध और व्यक्तिगत मानसिक स्वास्थ्य का गहरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए गर्भवती महिलाओं को प्यार, सहयोग, भावनात्मक समर्थन और आवश्यकता होने पर मानसिक स्वास्थ्य सहायता मिलनी चाहिए, ताकि माँ और बच्चे दोनों स्वस्थ रह सकें।

विवाह विच्छेद के प्रक्रिया में गर्भवती महिलाओं का अधिकार है कि यदि कोई महिला गर्भवती है और उसका विवाह विच्छेद हो चुका है या विवाह विच्छेद प्रक्रिया चल रही है, तो कानून उसे विशेष सुरक्षा देता है क्योंकि गर्भावस्था को अदालत केवल निजी परिस्थिति नहीं बल्कि स्वास्थ्य, आर्थिक सुरक्षा और आने वाले बच्चे के हित से भी जोड़कर देखती है। जैसा की हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, में लिखा है कि धारा 24 में महिला अपनी आजीविका स्वयं नहीं चला पा रही है, तो वह अपने लिए **भरण-पोषण (मेंटेनेंस)** मांग सकती है। अदालत पति की आय, पत्नी की आर्थिक स्थिति, गर्भावस्था के चिकित्सा खर्च, दवाइयाँ, जांच, पौष्टिक भोजन और प्रसव से जुड़े खर्चों को ध्यान में रख सकती है। इसलिए गर्भवती होने की स्थिति में अदालत कई मामलों में अंतरिम आर्थिक सहायता देने पर भी विचार करती है। विवाह विच्छेद हो जाने से होने वाले बच्चे के प्रति पिता की जिम्मेदारी समाप्त नहीं होती। बच्चे के जन्म के बाद पिता पर उसके पालन-पोषण, इलाज, शिक्षा और अन्य आवश्यक खर्चों की कानूनी जिम्मेदारी बनी रहती है। यदि बच्चा माँ के साथ रहता है, तो माँ बच्चे की ओर से पिता से नियमित आर्थिक सहायता मांग सकती है। जैसा कि मुस्लिम महिला (विवाह-विच्छेद पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम 1986, धारा3(1)A में तलाकशुदा मुस्लिम महिला को इद्दत अवधि के दौरान "उचित और न्यायसंगत प्रावधान तथा भरण-पोषण का अधिकार है। यदि महिला गर्भवती है, तो इद्दत अवधि सामान्य तीन मासिक चक्र तक सीमित नहीं रहती; गर्भवती तलाकशुदा महिला की इद्दत प्रसव तक रहती है। इसलिए इस अवधि तक उसके लिए उचित प्रावधान और भरण-पोषण की जिम्मेदारी पति पर रहती है। धारा 3(1)B में यदि तलाकशुदा महिला बच्चे का पालन-पोषण स्वयं कर रही है, तो बच्चे के जन्म की तारीख से दो वर्ष तक उसके भरण-पोषण का उचित प्रावधान और खर्च पिता द्वारा दिया जाएगा। अदालत का मुख्य सिद्धांत हमेशा बच्चे का कल्याण होता है, न कि माता-पिता के बीच वैवाहिक संबंध का बने रहना। इसलिए गर्भवती तलाकशुदा महिला अपने होने वाले बच्चे के भविष्य की सुरक्षा के लिए भी कानूनी दावा कर सकती है। जैसा की गार्जियंस एंड वार्ड्स एक्ट 1890, में अदालत का प्रमुख सिद्धांत बच्चे का सर्वोत्तम हित होता है। बच्चे की कस्टडी के मामले में भी अदालत आमतौर पर बच्चे के सर्वोत्तम हित को प्राथमिकता देती है। नवजात या बहुत छोटे बच्चों के मामलों में सामान्यतः यह माना जाता है कि माँ की देखभाल अधिक आवश्यक होती है। इसका अर्थ यह नहीं कि पिता के अधिकार समाप्त हो जाते हैं, बल्कि अदालत यह देखती है कि बच्चे का शारीरिक, भावनात्मक और मानसिक विकास किस वातावरण में अधिक सुरक्षित रहेगा। यदि गर्भवती महिला को पति या ससुराल की ओर से प्रताड़ना, धमकी, आर्थिक रोक, या घर से निकालने की कोशिश की जाती है, तो वह घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005, के तहत अदालत से सुरक्षा आदेश, रहने का अधिकार और आर्थिक राहत मांग सकती है। इस कानून के तहत केवल शारीरिक हिंसा ही नहीं, बल्कि मानसिक, भावनात्मक और आर्थिक उत्पीड़न भी हिंसा माना जाता है। इसका मतलब यह है कि यदि पति गर्भावस्था के दौरान खर्च देने से इंकार करे, दवाइयों के पैसे न दे, या महिला को रहने की जगह से वंचित करे, तो वह भी कानूनी कार्रवाई का आधार बन सकता है। सामाजिक दृष्टि से भारत के कई हिस्सों में गर्भवती तलाकशुदा महिला को आलोचना, मानसिक दबाव, पारिवारिक अस्वीकार या सामाजिक कलंक का सामना करना पड़ सकता है। लेकिन कानून समाज

की धारणाओं के आधार पर नहीं चलता। अदालत महिला की गरिमा, स्वास्थ्य, आर्थिक आवश्यकता और बच्चे के भविष्य को केंद्र में रखती है। इसलिए कानूनी रूप से गर्भवती तलाकशुदा महिला को सुरक्षा, आर्थिक सहायता और सम्मानपूर्वक जीवन जीने का पूरा अधिकार है। आलम (2018)- मुस्लिम महिलाओं के भरण-पोषण के अधिकारों की रक्षा के लिए कानून और न्यायालयों की व्याख्या दोनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है तथा महिलाओं को आर्थिक सुरक्षा और सम्मानजनक जीवन सुनिश्चित करने का प्रयास किया है। फादिल, मजीदाह, और महमुदी, (2024)- तलाक के बाद महिलाओं को केवल कागज़ पर अधिकार मिलना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उन अधिकारों का वास्तविक रूप से पालन और संरक्षण होना चाहिए। इसके लिए प्रभावी कानून, निष्पक्ष न्यायपालिका, कानूनी जागरूकता और सामाजिक सहयोग आवश्यक हैं। इससे महिलाओं को सम्मानपूर्वक और आत्मनिर्भर जीवन जीने का अवसर मिलता है। सिरेगर, यूसरियल, अरिसमैन और लिडिया (2023)- तलाक के बाद पत्नी और बच्चों के अधिकार कानून द्वारा सुरक्षित हैं, लेकिन जागरूकता की कमी, कानूनी प्रक्रियाओं की कठिनाई और पति द्वारा जिम्मेदारियाँ न निभाने के कारण इन अधिकारों का पूरा लाभ नहीं मिल पाता। शाहिद (2018)- तलाक के बाद पत्नी और बच्चों के अधिकार कानून द्वारा सुरक्षित हैं, लेकिन जागरूकता की कमी, कानूनी प्रक्रियाओं की कठिनाई और पति द्वारा जिम्मेदारियाँ न निभाने के कारण इन अधिकारों का पूरा लाभ नहीं मिल पाता। घोद्राती(2020)- कानून और समाज दोनों की जिम्मेदारी है कि वे महिलाओं को **समान अधिकार**, **सम्मान**, **स्वास्थ्य सुविधाएँ और अपने जीवन से जुड़े निर्णय लेने की स्वतंत्रता** प्रदान करें। इससे महिलाओं का विकास होगा और समाज भी अधिक न्यायपूर्ण और समान बनेगा।

विवाह विच्छेद के प्रक्रिया में गर्भवती महिलाओं कि पारिवारिक न्यायलय की भूमिका में यदि गर्भवती महिला है, तो पारिवारिक न्यायालय की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। पारिवारिक न्यायालय केवल पति-पत्नी के बीच वैवाहिक विवाद का निपटारा नहीं करता, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता है कि गर्भवती महिला और उसके गर्भ से जन्म लेने वाले बच्चे के अधिकार सुरक्षित रहें। अदालत सबसे पहले महिला की आर्थिक स्थिति, उसकी चिकित्सा आवश्यकताओं, रहने-खाने की जरूरतों और प्रसव से जुड़े खर्चों को ध्यान में रखती है। यदि महिला स्वयं अपना खर्च उठाने में सक्षम नहीं है, तो न्यायालय पति की आय और परिस्थितियों को देखकर उसके लिए भरण-पोषण तथा चिकित्सा सहायता की व्यवस्था कर सकता है। पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 के अंतर्गत पारिवारिक न्यायालय को परिवार संबंधी मामलों का त्वरित और संवेदनशील समाधान करने का अधिकार दिया गया है। गर्भवती महिला के मामलों में यह संवेदनशीलता और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि गर्भावस्था ऐसी अवस्था है जिसमें विलंब से महिला और होने वाले बच्चे दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए अदालत कई बार अंतिम निर्णय आने से पहले ही अंतरिम राहत देती है, जिससे महिला को गर्भावस्था के दौरान दवा, इलाज, अस्पताल और प्रसव का आवश्यक खर्च समय पर मिल सके। यदि गर्भधारण विवाह के दौरान हुआ है, तो पारिवारिक न्यायालय इस बात को भी महत्व देता है कि जन्म लेने वाले बच्चे के वैधानिक अधिकार सुरक्षित रहें। बच्चे के जन्म के बाद यदि माता-पिता के बीच पालन-पोषण या अभिरक्षा को लेकर विवाद होता है, तो अदालत केवल माता या पिता के अधिकारों को नहीं देखती, बल्कि बच्चे के सर्वोत्तम हित को प्राथमिकता देती है। नवजात शिशु या बहुत छोटे बच्चे के मामले में सामान्यतः माँ की देखभाल को अधिक उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि प्रारंभिक अवस्था में बच्चे को माँ की शारीरिक और भावनात्मक देखभाल की अधिक आवश्यकता होती है। इस प्रकार, विवाह विच्छेद के बाद गर्भवती महिला के मामले में पारिवारिक न्यायालय की भूमिका केवल कानूनी विवाद का फैसला देना नहीं है, बल्कि महिला की सुरक्षा, प्रसव संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति, और जन्म लेने वाले बच्चे के अधिकारों की रक्षा करना भी है। पारिवारिक न्यायालय यह सुनिश्चित करता है कि तलाक के बाद भी गर्भवती महिला और उनके बच्चे का जीवन असुरक्षित न रहे। नारायण (2014)- सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसलों से मुस्लिम महिलाओं के भरण-पोषण के अधिकार को मजबूत किया। **शाह बानो**, **दानियाल लतीफ़ी** और **शबाना बानो** मामलों में न्यायालय ने महिलाओं को आर्थिक सुरक्षा,

समानता और सम्मान का अधिकार दिया। इसलिए इन फैसलों को **परिवर्तनकारी न्यायशास्त्र** का उदाहरण माना जाता है। बसु (2006)- कोलकाता में महिलाएँ तलाक घरेलू हिंसा के मामलों में न्याय पाने के लिए अदालत के साथ-साथ पुलिस, परिवार और अन्य सामाजिक संस्थाओं की भी मदद लेती हैं। यह अध्याय बताता है कि न्याय केवल अदालत से नहीं, बल्कि कई कानूनी और सामाजिक माध्यमों से भी मिल सकता है। सूद (2024)- भारत में फैमिली कोर्ट तलाक, भरण-पोषण, बच्चों की अभिरक्षा और पारिवारिक विवादों का शीघ्र, कम खर्चीला और शांतिपूर्ण समाधान करने के लिए बनाई गई हैं। इनका उद्देश्य समझौते को बढ़ावा देकर समय पर न्याय दिलाना है, लेकिन मामलों की अधिकता, कर्मचारियों की कमी और देरी के कारण व्यवस्था को और मजबूत बनाने की आवश्यकता है। शक्ति और इचसन (2026)- गर्भावस्था तलाक लेने में बाधा नहीं है। यदि विवाह में लगातार विवाद, हिंसा या अन्य गंभीर समस्याएँ हैं, तो गर्भवती पत्नी भी तलाक ले सकती है। न्यायाधीश प्रत्येक मामले की परिस्थितियों को देखकर निर्णय लेते हैं और महिला तथा गर्भस्थ बच्चे की सुरक्षा और न्याय को सबसे अधिक महत्व देते हैं। **ब्रेगर** (2012)- **परिवार न्यायालयों में कई बार माँ की वास्तविक भूमिका और उसके योगदान को पूरी तरह नहीं देखा जाता।** इसलिए अदालतों और कानून में ऐसे सुधार होने चाहिए जो **माँ के अधिकारों, उसके परिश्रम और बच्चों के सर्वोत्तम हितों की बेहतर सुरक्षा करें।**

शोध पद्धति- इस अध्ययन में **द्वितीयक आँकड़ों** का उपयोग किया गया है। इसमे जो पहले से प्रकाशित स्रोतों में उपलब्ध हैं, जैसे- विभिन्न पुस्तकों, शोध-पत्रों, जर्नलों, न्यायालयों के निर्णयों आदि से ली गई हैं। यह अध्ययन मुख्य रूप से **व्याख्यात्मक तथा विश्लेषणात्मक** प्रकृति का है। जिससे गर्भवती तलाकशुदा महिलाओं के समक्ष आने वाली सामाजिक, आर्थिक, मानसिक एवं कानूनी चुनौतियों तथा उनके संरक्षण में पारिवारिक न्यायालय की भूमिका का समग्र मूल्यांकन किया जा सके।

चर्चा

यह अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में विवाह को परंपरागत रूप से एक पवित्र और स्थायी संस्था माना गया है, किंतु आधुनिक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण विवाह-विच्छेद (तलाक) के मामलों में निरंतर वृद्धि हो रही है। साहू और फोंसेका के अनुसार आधुनिक जीवनशैली, मतभेद, अहंकार, संयुक्त परिवारों का विघटन तथा बदलती पारिवारिक संरचना तलाक की बढ़ती प्रवृत्ति के प्रमुख कारण हैं। इसी प्रकार थडाथिल और श्रीराम के अनुसार घरेलू हिंसा, दहेज, शराब की लत, ससुराल का हस्तक्षेप तथा विवाहेतर संबंधों को वैवाहिक विघटन के प्रमुख कारणों के रूप में रेखांकित किया। विशेष रूप से गर्भावस्था के दौरान होने वाले वैवाहिक विवादों पर किए गए अध्ययनों से ज्ञात होता है कि आर्थिक कठिनाइयाँ, पति का असहयोग, पारिवारिक हस्तक्षेप तथा जिम्मेदारियों के निर्वहन में कमी गर्भवती महिलाओं को तलाक का निर्णय लेने के लिए प्रेरित कर सकती हैं। सोलिचा और इस्तिक़ोमाह के अनुसार विवाह के प्रारंभिक वर्ष में गर्भवती महिलाएँ अनेक प्रयासों के बाद अंततः तलाक का निर्णय लेती हैं। वहीं शक्ति और इहसान के अनुसार गर्भावस्था तलाक प्राप्त करने में कानूनी बाधा नहीं है और न्यायालय प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के आधार पर महिला एवं गर्भस्थ शिशु के सर्वोत्तम हित को प्राथमिकता देते हैं। दूसरी ओर इज़ुलहक़ ने इस विषय को इस्लामी विधि के संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए बताया कि शाफ़ी मत गर्भावस्था में तलाक को वैध मानता है, जबकि मालिकी मत के कुछ विद्वान इसे अनुचित मानते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि धार्मिक और कानूनी दृष्टिकोणों में विविधता विद्यमान है। तलाक का प्रभाव केवल पति-पत्नी तक सीमित नहीं रहता, बल्कि बच्चों और पूरे परिवार पर भी पड़ता है। थडाथिल और श्रीराम, साहू और फोंसेका के अनुसार तलाक से बच्चों में असुरक्षा, भावनात्मक तनाव तथा पारिवारिक अस्थिरता उत्पन्न होती है। वहीं बर्नज़ानी, सॉसिएर, डेविड और बोरगेट के अनुसार गर्भावस्था के दौरान पति, परिवार और सामाजिक सहयोग का महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। महिलाओं

पर तलाक के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव भी अनेक अध्ययनों में सामने आए हैं। लेस्ली के अनुसार विवाह-विच्छेद के बाद महिलाएँ मानसिक तनाव, सामाजिक दबाव तथा स्वास्थ्य संबंधी कठिनाइयों का सामना करती हैं। इसी प्रकार मिश्रा, थम्मिनैना, और मिश्रा ने पाया कि परिवार, बच्चों तथा आर्थिक जिम्मेदारियों का भार महिलाओं के स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करता है, जबकि परिवार, मित्रों एवं समाज का सहयोग इन कठिनाइयों को कम करने में सहायक होता है। कानूनी दृष्टि से अधिकांश अध्ययनों में यह पाया गया कि तलाक के बाद महिलाओं एवं बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त विधिक प्रावधान उपलब्ध हैं, किंतु उनके प्रभावी क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ हैं। आलम और नारायण के अनुसार न्यायालयों ने मुस्लिम महिलाओं के भरण-पोषण के अधिकारों को सुदृढ़ किया है और उन्हें आर्थिक सुरक्षा एवं सम्मानजनक जीवन प्रदान करने का प्रयास किया है। वहीं फादिल, मजीदा, और महमूदी, सिरेगर, युसेरियल, अरिस्मान, और लिडिया और शाहिद के अनुसार कानूनी जागरूकता की कमी, जटिल न्यायिक प्रक्रियाएँ तथा पति द्वारा उत्तरदायित्वों का निर्वहन न करना महिलाओं और बच्चों को उनके वैधानिक अधिकारों से लाभ नहीं होने देता। परिवार न्यायालयों एवं न्यायिक व्यवस्था की भूमिका भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है। सूद के अनुसार परिवार न्यायालयों का उद्देश्य पारिवारिक विवादों का त्वरित, सस्ता और सौहार्दपूर्ण समाधान करना है, किंतु लंबित मामलों और संसाधनों की कमी के कारण उनकी प्रभावशीलता प्रभावित होती है। इसी प्रकार ब्रेगर ने सुझाव दिया कि न्यायालयों को माँ की भूमिका और बच्चों के सर्वोत्तम हितों को अधिक संवेदनशीलता से ध्यान में रखना चाहिए। बसु ने यह भी स्पष्ट किया कि महिलाएँ न्याय प्राप्त करने के लिए केवल न्यायालयों पर निर्भर नहीं रहतीं, बल्कि पुलिस, परिवार तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं का भी सहारा लेती हैं।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विवाह विच्छेद की प्रक्रिया गर्भवती महिलाओं के लिए केवल वैवाहिक संबंधों की समाप्ति नहीं, बल्कि भावनात्मक, सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक तथा कानूनी चुनौतियों से जुड़ी एक जटिल एवं संवेदनशील स्थिति है। गर्भावस्था के दौरान महिला को भावनात्मक सहयोग, पारिवारिक सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता तथा स्वास्थ्य सेवाओं की विशेष आवश्यकता होती है, किंतु तलाक की स्थिति में उसे मानसिक तनाव, अवसाद, सामाजिक अस्वीकार्यता, आर्थिक असुरक्षा तथा पारिवारिक सहयोग के अभाव जैसी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन परिस्थितियों का प्रभाव महिला के साथ-साथ गर्भस्थ शिशु के विकास तथा जन्म के बाद उसके पालन-पोषण और समग्र कल्याण पर भी पड़ता है। यह भी स्पष्ट होता है कि केवल विधिक अधिकारों का अस्तित्व पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनका प्रभावी क्रियान्वयन अधिक आवश्यक है। न्यायिक प्रक्रिया में विलंब, कानूनी जागरूकता का अभाव, आर्थिक निर्भरता तथा सामाजिक पूर्वाग्रह महिलाओं को समय पर न्याय प्राप्त करने से वंचित कर देते हैं। पारिवारिक न्यायालय की भूमिका महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसका उद्देश्य केवल वैवाहिक विवादों का निस्तारण करना नहीं, बल्कि गर्भवती महिला एवं होने वाले बच्चे के सर्वोत्तम हितों की रक्षा सुनिश्चित करना भी है। हालांकि, मामलों की अधिकता, न्यायाधीशों एवं कर्मचारियों की कमी के कारण पारिवारिक न्यायालयों की कार्यक्षमता प्रभावित होती है। अतः विवाह विच्छेद की प्रक्रिया से गुजर रही गर्भवती महिलाओं की समस्याओं का समाधान केवल कानूनी उपायों से संभव नहीं है। इसके लिए सामाजिक जागरूकता, पारिवारिक सहयोग, मनोवैज्ञानिक परामर्श, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता तथा आर्थिक पुनर्वास जैसी समन्वित व्यवस्थाओं को सुदृढ़ करना आवश्यक है। सरकार, न्यायपालिका, स्वास्थ्य विभाग, विधिक सेवा प्राधिकरण तथा सामाजिक संगठनों के संयुक्त प्रयासों से ही गर्भवती महिलाओं और उनके बच्चों के अधिकारों, सुरक्षा एवं सम्मानजनक जीवन को प्रभावी रूप से सुनिश्चित किया जा सकता है। तलाक की बढ़ती प्रवृत्ति सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक परिस्थितियों, वैवाहिक संबंधों की गुणवत्ता तथा कानूनी व्यवस्थाओं से गहराई से जुड़ी हुई है। विशेषकर गर्भवती महिलाओं के संदर्भ में यह विषय और अधिक संवेदनशील हो जाता है, क्योंकि इसमें महिला

के साथ-साथ गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं भविष्य का प्रश्न भी जुड़ा होता है। इसलिए केवल कानूनी अधिकार प्रदान करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि प्रभावी न्यायिक व्यवस्था, सामाजिक सहयोग, मानसिक स्वास्थ्य परामर्श, आर्थिक सुरक्षा, वैवाहिक परामर्श सेवाओं तथा जन-जागरूकता के माध्यम से महिलाओं और बच्चों के अधिकारों का वास्तविक संरक्षण सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है। गर्भवती महिलाओं के तलाक संबंधी मामलों में कानूनी, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा पारिवारिक सभी आयामों को समान रूप से ध्यान में रखते हुए समग्र और संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए।

संदर्भ

1. Thadathil, A., & Sriram, S. (2020). Divorce, families and adolescents in India: A review of research. Journal of Divorce & Remarriage, 61(1), 1-21.
2. Pothen, S. (1989). Divorce in Hindu society. Journal of Comparative Family Studies, 20(3), 377-392.
3. खोमन लाल साहू, विवाह विच्छेद: एक सामाजिक अध्ययन, International Journal of Reviews and Research in Social Sciences, 2025; 13(4):225-1.doi:10.52711/2454-2687.2025.00033.
4. Dommaraju, P. (2016). Divorce and separation in India. *Population and Development Review*, 195-223.
5. Fonseca, M. B. (1963). Family Disorganisation & Divorce in Indian Communities∗. *Sociological Bulletin*, *12*(2), 14-33.
6. Izzulhaq, F. (2023). *Divorce of Pregnant Women: A Comparative Study Analysis of the Thoughts of the Syāfi'i Mażhab and the Māliki Mażhab*. Jurnal Ilmiah Mahasiswa Raushan Fikr, 12(1), 74–91. https://doi.org/10.24090/jimrf.v12i1.6199.
7. Leslie NJ. Divorced women's sexual and contraceptive issues. Women Ther. 1988;7(2-3):265-76. doi: 10.1300/J015v07n02_21. PMID: 12283880.
8. Narain, V. (2014). *The Supreme Court of India and maintenance for Muslim women: Transformatory jurisprudence*. In L. Fernandes (Ed.), *Routledge handbook on gender in South Asia*. Routledge.
9. Basu, S. (2006). Playing Off Courts: The Negotiation of Divorce and Violence in Plural Legal Settings in Kolkata. *The Journal of Legal Pluralism and Unofficial Law*, *38*(52), 41–75. https://doi.org/10.1080/07329113.2006.10756591
10. SOOD, D. P., & Verma, A. (2024). THE WORKING OF FAMILY COURTS IN INDIA: A STUDY. *Panjab University Law Review*, *63*(1).
11. Alam, S. (2018). A Critical Study of Maintenance Rights of Muslim Divorced Wife in India. *EDU WORLD*, 144.
12. Mishra, P. S., Thamminaina, A., & Mishra, N. (2021). Single mothers: Strategies of family management and support systems in relation to health. *Journal of International Women's Studies*, *22*(5), 393-406.
13. Fadil, F., Mazidah, Z., & Mahmudi, Z. (2024). Fulfillment of women's rights after divorce dynamics and transformation in the legal journey. *De Jure: Jurnal Hukum dan Syari'ah*, *16*(1), 1-20.
14. Siregar, Y. A., Yusrial, Y., Arisman, A., & Lidia, N. (2023). Legal Certainty of the Rights of Wives and Children After Divorce. *Jurnal Elsyakhshi*, *1*(1), 25-32.
15. Shahid, A. (2018). Post-Divorce Maintenance Rights for Muslim Women in Pakistan and Iran: Making the Case for Law Reform . *Muslim World Journal of Human Rights*, *15*(1), 59-98. https://doi.org/10.1515/mwjhr-2018-0004

16. Sakti, I., & Ichsan, M. (2026). Judge's Ijtihad Discourse In Deciding Cases Divorce Suit Of Pregnant Wives In Indonesia. *Jurnal Hadratul Madaniyah*, *13*(1), 1-10.
17. Breger, M. L. (2012). The (in) visibility of motherhood in family court proceedings. *NYU Rev. L. & Soc. Change*, *36*, 555.
18. Ghodrati, F. (2020). Jurisprudence study of the importance of the role of a woman’s right to have a child: A review. *Current Women's Health Reviews*, *16*(3), 188-193.
19. Bernazzani, O., Saucier, J. F., David, H., & Borgeat, F. (1997). Psychosocial factors related to emotional disturbances during pregnancy. *Journal of psychosomatic research*, *42*(4), 391-402.